शंकरदयाल सिंह

यात्राओं की अंतर्यात्रा

मेरे बचपन का हिंदुस्तान

बाँगलादेश के विमान से ढाका में पाँव रखते ही मेरे कानों में अजमल सुल्तानपुरी की ये पंक्तियाँ गूँजने लगीं—

न बाँगलादेश, न पाकिस्तान,
मेरे बचपन का हिंदुस्तान,
मैं उसको ढूँढ़ रहा हूँ—

कई वर्षों पूर्व मैंने एकता के उस शायर से जब यह कविता सुनी थी तो आँखों में आँसू आ गए थे। भारत और बाँगलादेश, बाँगलादेश और भारत भले ही मानचित्र पर दो हों, लेकिन दोनों की धड़कन एक, मानसिकता एक, गरीबी एक, बेहाली एक तथा अविकसित से विकसित होने की तमन्ना भी एक तरह की।

प्राय: ऐसा होता है कि आदमी दीन-दुनिया घूम आता है, लेकिन अपने पास की धरती ही छूट जाती है। मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही रहा। दुनिया के कई हिस्सों में लगभग पचास-साठ देशों का चक्कर लगा आया, लेकिन बाँगलादेश अभी तक छूटा हुआ था। वहाँ की प्रधानमंत्री बेगम खालिदा जिया के निमंत्रण पर जब मुझे वहाँ जाने का मौका मिला तो मैंने उसे अपना सौभाग्य समझा। निमंत्रण का प्रयोजन था बाँगलादेश की सत्ताधारी पार्टी 'बाँगलादेश नेशनलिस्ट पार्टी' का चौथा महाधिवेशन, जिसमें दस-बारह देशों के पचीस-तीस प्रतिनिधियों के साथ एक विदेशी मेहमान के रूप में मैं भी भाग लेने पहुँचा। भूगोल, इतिहास और राजनीति अपनी जगह पर हैं, लेकिन हृदय की अनुभूति और यायावरी की मादक गंध कस्तूरी मृग के समान अंदर-ही-अंदर मुझे मोहित किए हुए थी।

दो राष्ट्रगान : एक रचयिता

दुनिया में शायद यह एक उदाहरण है कि दो देशों के राष्ट्रगान का रचयिता कोई एक हो। भारत और बाँगलादेश इस रूप में एक दूसरे से कैसे

गुँथ गए हैं। भारत का राष्ट्रगान—'जन-गण-मन अधिनायक जय हे' तथा बाँगलादेश का राष्ट्रगान 'आमार सोनार बाँगला'—दोनों के रचयिता गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर। मैं नहीं समझता कि दुनिया में कहीं इस तरह का युग्मबोध और होगा।

इससे साफ जाहिर है कि सीमाएँ बँट सकती हैं, भावनाएँ नहीं बँट सकतीं।

दो बेगमों का देश

कैसा है यह भी एक संयोग कि बाँगलादेश की प्रधानमंत्री बेगम खालिदा जिया और वहाँ की विरोधी दल की नेता बेगम हसीना। दोनों का संबंध अतीत के उन क्षणों से है जहाँ इतिहास करवटें लेता है। प्रधानमंत्री खालिदा जिया भू. पू. राष्ट्रपति श्री जिया-उर-रहमान साहब की बेगम हैं, दूसरी ओर हसीना बेगम बंगबंधु मुजीबुर्रहमान साहब की बेटी हैं। दोनों की आँखों में अभी भी इतिहास तैरता है। उन्हें निश्चय ही याद होगा कि बाँगलादेश की मुक्ति के बाद १५ अगस्त, १९७६ को जिस नृशंसतापूर्ण ढंग से बंगबंधु और उनके परिवार की हत्या हुई थी, उसमें उनका पूरा परिवार मारा गया था, केवल बच गई थीं उनकी दो पुत्रियाँ हसीना और रेहाना; वे भी इसलिए कि दोनों उस समय भारत में थीं।

इतिहास का यह भी संयोग है। आज दो बेगमें आमने-सामने हैं। एक वहाँ की सरकारी दल बाँगलादेश नेशनलिस्ट पार्टी की नेता और दूसरी वहाँ की प्रमुख विरोधी दल अवामी लीग की नेता।

गंगा यहाँ बूढ़ी क्यों है?

बाँगलादेश की राजधानी ढाका बूढ़ी गंगा के तट पर बसी है। यह शाश्वत सत्य है कि नदियाँ कभी बूढ़ी नहीं होतीं, उनमें भी गंगा की कल्पना तो कभी वृद्धा की हो ही नहीं सकती। गंगा केवल पवित्रतम नदी ही नहीं, उच्चतम भावना भी है। बार-बार मेरे मन में यहाँ एक ही बात उठ रही है कि गंगा यहाँ बूढ़ी क्यों हो गई?

स्वर्ग से प्रवाहित होकर भागीरथ की तपस्या से पूरित गंगा जब पृथ्वी पर आने के लिए तैयार हुईं तो वर्षों शंकर की जटाओं में ही घूमती रहीं।

पृथ्वी पर आगमन शाश्वत सत्य है, पवित्रता का अभिषेक—जिसके संबंध में पद्माकर ने ठीक ही कहा था—

'काहू ने न तारे, तिन्हें गंगा तुम तारे,
और जेते तुम तारे, तेते नभ में न तारे हैं।'

मैंने कई लोगों से जानना चाहा कि यहाँ गंगा का नाम बूढ़ी गंगा क्यों है? बाँगलादेश नेशनल असेंबली के उपाध्यक्ष जनाब अख्तियार खाँ ने हँसकर कहा, 'हिमालय से चलकर हजारों मीलों का फासला तय करके जब गंगा यहाँ पहुँचीं तो थक गई होंगी, इसलिए उन्हें यहाँ बूढ़ी गंगा कहा गया है।'

बंगबंधु की खामोश इबादत

हमने यह जरूरी समझा कि बंगबंधु शेख मुजीबुर्रहमान के घर जाकर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि पेश करें। दुनिया जानती है और अच्छी तरह जानती है कि उनकी हत्या ढाका के उनके धानमंडी स्थित आवास में १५ अगस्त, १९७६ को हुई थी। मैं तथा मेरे मित्र श्री मुमताज अंसारी, एम. पी. बेगम हसीना से मिलकर मुजीब साहब के एक भतीजे इकबाल साहब के साथ मरहूम मुजीब साहब के घर पर पहुँचे।

बरामदे में ही उनकी मुसकराती हुई आदमकद तसवीर हमारा स्वागत कर रही थी और हम उन्हें प्रणाम कर रहे थे। उस मकान की दीवारों पर आज भी गोली के इतने निशान हैं जो अवाक् कर देते हैं। जिस तरह से बंगबंधु की हत्या की गई, वह केवल किसी राष्ट्रपति की हत्या नहीं थी, वह मानवता की हत्या थी। अभी भी कई जगहों पर खून के धब्बे उस घटना की याद तरोताजा कर देते हैं।

मुजीब साहब और उनकी बेगम की हत्या उनके सोने के कमरे में की गई। उस कमरे की बगल में कमाला, उनकी बेगम तथा उनके बच्चे सोए हुए थे। उनकी भी नृशंस हत्या हत्यारों ने की। ऊपर के कमरे में उनके दूसरे बेटे जमाल थे। उनको तथा उनकी बीवी को भी नहीं छोड़ा।

इसी प्रकार उनके परिवार तथा उनके सगे-संबंधी थे, उनकी भी हत्याएँ की गईं। बंगबंधु के अध्ययन-कक्ष में जब गया तब वहाँ श्रद्धा के साथ गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, चित्तरंजन दास, नेताजी सुभाष

चंद्र बोस तथा काजी नजरुल इस्लाम की तसवीरें लगी हुई देखीं। उनके निजी पुस्तकालय में पिचहत्तर प्रतिशत पुस्तकें बंगला की तथा शेष उर्दू और अंग्रेजी की थीं। वहाँ यह देखकर मुझे खुशी हुई कि हिंदी की भी तीन पुस्तकें उनकी लाइब्रेरी में रखी हुई थीं।

रह-रहकर बाँगलादेश के निर्माण का और बंगबंधु के लौटने और राष्ट्रपति पद सँभालने की सारी घटनाएँ तसवीर की तरह मेरी आँखों के सामने गुजर रही थीं।

ढाका से अगरतल्ला तक

मैंने निश्चय किया कि चाहे जो हो, बाँगलादेश से भारत तक का सफर सड़क-मार्ग से करूँगा। ढाका से अगरतल्ला के लिए भारतीय दूतावास की गाड़ी से हम ४ सितंबर, १९९३ के प्रातःकाल बिदा हुए। श्री मुमताज अंसारी संसद् सदस्य, अशोक सज्जनहार, भारतीय दूतावास के राजनयिक और मैं ९-१० बजे निकले और २ बजते-बजते अगरतल्ला पहुँचे; जहाँ राजेश मेरी प्रतीक्षा में था। यानी चार-पाँच घंटों में एक देश की सीमा दूसरे देश में समाप्त होती है। किस प्रकार आदमी समझे कि हम एक नहीं, दो हैं। नाश्ता किया ढाका में और दिन का भोजन किया अगरतल्ला में।

भला इस सिमटी दूरी में मात्र नाम के लिए ही हम दो हैं, वरना हम एक हैं। वही नदियों का नजारा, हर जगह नावों का जमघट, मछली-भात की गंध। लुंगी और गंजी मुख्य पहनावा तथा हुक्के की गुड़गुड़ाहट और पान की पीक। फिर आता हूँ अपने उसी निष्कर्ष पर, जहाँ से चला था। मन को संतोष हुआ कि बाँगलादेश हो आया, वरना लंबी दूरियों की छलाँग तो हम बहुत लगा लें, हमारा पास-पड़ोस अनदेखा रह जाता है।

□

वुड' की शक्ल में मौलिकता बनाए रखी जाए, यानी 'ड्रिफ्ट वुड' पर तराशने की इच्छा को कैसे रोका जाए। थोड़ी तराश से शक्लों को ज्यादा आसानी से देखा जा सकता है और नई शक्ल बनाई जा सकती है। लेकिन प्राकृतिक मौलिकता जाती रहेगी। इसलिए अपने लिए एक सिद्धांत बनाया कि एक छोटी-सी आरी के सिवाय कुछ भी इस्तेमाल नहीं होगा; यानि वुड से कुछ निकाला तो जा सकेगा, लेकिन न कुछ जोड़ा जाएगा और न तराशा जाएगा।

"बहरहाल इस सारे जुनून का नतीजा यह निकला कि मेरा घर एक म्यूजियम जैसा हो गया, जिसमें अनेक किस्म की शक्लें मेहमानों को घूरती रहती हैं। क्या किया जाए? न इन शक्लों को अपने से अलग कर सकता हूँ और न मेहमानों को। अगर आप भी देखना चाहें तो आपका स्वागत है।"

निश्चय ही इन जड़ों और सूखी टहनियों ने हमारे अंदर अनुराग पैदा किया है, उससे हम अछूते नहीं रह सकते।

□

इतिहास का गौरव और अतीत का अंकन—पाटलिपुत्र

यात्राएँ कभी-कभी इतिहास बन जाती हैं। एक ओर जहाँ अतीत उनमें झाँकता है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान उन्हें याद कर जहाँ गौरव का अनुभव करता है वहीं सिसकियाँ भी भरता है। ऐसी ही भूमि है पाटलिपुत्र, जिसे आज हम पटना के नाम से जानते हैं। देश के दूसरे सबसे बड़े प्रदेश बिहार की राजधानी है। इसे किसी जमाने में गुलाबी सुगंध से पूरित होने के कारण 'पाटलग्राम' कहा जाता था। जैन श्रुतियों में इसे गर्व के साथ 'कुसुमपुर' के नाम से पुकारा गया है। अतीत के उस गौरव को आपके सामने ठीक से उजागर करने के लिए मैं यहाँ विशेष रूप से दो ग्रंथों का सहारा लेता हूँ—एक, 'ऐतिहासिक ग्रंथावली' नामक पुस्तक का और दूसरी कृति है—'तपोभूमि'।

बुद्ध जब अंतिम बार मगध आए थे, गंगा और शोण नदियों के संगम के पास पाटलि नामक ग्राम बसा हुआ था; जो पाटल या ढाक के वृक्षों से आच्छादित था। मगधराज अजातशत्रु ने लिच्छवी गणराज्य का अंत करने के पश्चात् मिट्टी का एक दुर्ग पाटलिग्राम के पास बनवाया, जिससे मगध की लिच्छवियों के आक्रमणों से रक्षा हो सके। बुद्धचरित २२, ३ से पता चलता है कि यह किला मगधराज के मंत्री, वर्षकार ने बनवाया था। अजातशत्रु के पुत्र उदयन या उदायिभद्र ने इसी स्थान पर पाटलिपुत्र नगर की नींव डाली। पालि ग्रंथों के अनुसार भी नगर का निर्माण सुमध और वस्सकार नामक मंत्रियों ने करवाया था। पालि अनुश्रुति के अनुसार, गौतम बुद्ध ने पाटलि के पास कई बार राजगृह और वैशाली के बीच आते-जाते गंगा को पार किया था और इस ग्राम की बढ़ती हुई सीमाओं को देख भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में यह एक महान् नगर बन जाएगा। अजातशत्रु तथा उसके वंशजों के लिए पाटलिपुत्र की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी। अब तक मगध की राजधानी

राजगृह में थी, किंतु अजातशत्रु द्वारा वैशाली तथा काशी की विजय के बाद मगध के राज्य का विस्तार भी काशी तक बढ़ गया और इसीलिए राजगृह से अधिक केंद्रीय स्थान पर राजधानी बनाना आवश्यक हो गया था।

जैन ग्रंथ विविध तीर्थकल्प में पाटलिपुत्र के नामकरण के संबंध में एक मनोरंजक कथा का उल्लेख है। इसके अनुसार, कुणिक अजातशत्रु की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र उदयी ने अपने पिता की मृत्यु के शोक के कारण अपनी राजधानी को चंपा से अन्यत्र ले जाने का विचार किया और शकुन बतानेवाले को नई राजधानी बनाने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में भेजा। ये लोग खोजते-खोजते गंगा तट पर एक स्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने पुष्पों से लदा हुआ एक पाटल वृक्ष देखा, जिस पर एक नीलकंठ बैठा हुआ कीड़े खा रहा था। इस दृश्य को उन्होंने शुभ शकुन माना और यहाँ पर मगध की नई राजधानी बनाने के लिए राजा को मंत्रणा दी। फलस्वरूप जो नया नगर उदयी ने बसाया, उसका नाम पाटलिपुत्र या कुसुमपुर रखा गया। उदयी ने यहाँ श्री नेमिका चैत्य बनाया और स्वयं जैन धर्म में दीक्षित हो गया। विविध तीर्थकल्प में चंद्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार, अशोक तथा कुणाल को क्रमशः पाटलिपुत्र में राज करते बताया गया है। जैन साधु स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में ही तपस्या की थी। इस ग्रंथ में नवनंद और उनके वंश को नष्ट करनेवाले चाणक्य का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त सर्वकलाविद् मूलदेव और अचल सार्थवाह श्रेष्ठि का नाम भी पाटलिपुत्र के संबंध में आया है।

वायुपुराण के अनुसार कुसुमपुर पाटलिपुत्र को उदयी ने अपने राज्याभिषेक के चतुर्थ वर्ष में बसाया था। यह तथ्य गार्गी संहिता की साक्षी से भी पुष्ट होता है। परिशिष्ट पर्वन के अनुसार भी इस नगर की नींव उदयी ने डाली थी।

पाटलिपुत्र का महत्त्व शोण-गंगा के संगम के कोण में बसा होने के कारण, सुरक्षा और व्यापार दोनों ही दृष्टियों से, शीघ्रता से बढ़ता गया और नगर का क्षेत्रफल भी लगभग बीस वर्गमील तक विस्तृत हो गया। श्री चि. वि. वैद्य के अनुसार, महाभारत के परवर्ती संस्करण के समय से पूर्व ही पाटलिपुत्र की स्थापना हो गई थी, किंतु इस नगर का नामोल्लेख इस महाकाव्य में नहीं है; जबकि निकटवर्ती राजगृह या गिरिव्रज और गया आदि का वर्णन कई स्थानों पर है। पाटलिपुत्र की विशेष ख्याति भारत के ऐतिहासिक काल के

विशालतम साम्राज्य मौर्य साम्राज्य की राजधानी के कारण हुई। चंद्रगुप्त मौर्य के समय में पाटलिपुत्र की समृद्धि तथा शासन-सुव्यवस्था का वर्णन राजदूत मेगस्थनीज ने भलीभाँति किया है, जिसमें पाटलिपुत्र के स्थानीय शासन के लिए बनी एक समिति की भी चर्चा की गई है।

उस समय यह नगर नौ मील लंबा तथा डेढ़ मील चौड़ा एवं चतुर्भुजाकार था। चंद्रगुप्त के भव्य राजप्रासाद का उल्लेख भी मेगस्थनीज ने विस्तार से किया है, जिसकी स्थिति, डॉ. स्पूनर के अनुसार, वर्तमान कुंभारार के निकट रही होगी। यह चौरासी स्तंभों पर आश्रित था। उस समय नगर में चतुर्दिक लकड़ी का परकोटा तथा जल से भरी हुई गहरी खाई थी।

अशोक ने पाटलिपुत्र में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए दो प्रस्तर-स्तंभ प्रस्थापित किए थे। इनमें से एक स्तंभ उत्खनन में मिला भी है। अशोक के शासनकाल के १८वें वर्ष में कुक्कुटाराम नामक उद्यान में मोगलीपुत्र तिस्सा के सभापतित्व में द्वितीय बौद्ध-धर्म संगति हुई थी।

जैन अनुश्रुति में कहा गया है कि पाटलिपुत्र में ही जैन की प्रथम परिषद् का सत्र संपन्न हुआ था। इसमें जैन धर्म के आगमों को संगृहीत करने का कार्य किया गया था। इस परिषद् के सभापति स्थूलभद्र थे। इनका समय चौथी ईसवी सन् पूर्व माना जाता है।

मौर्यकाल में पाटलिपुत्र से ही गांधार सहित संपूर्ण भारत का शासन संचालित होता था। इसका प्रमाण अशोक के भारत में पाए जानेवाले शिलालेख हैं। गिरनार के रुद्रदामन-अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि मौर्यकाल में मगध से सैकड़ों मील दूर सौराष्ट्र प्रदेश में भी पाटलिपुत्र का शासन चलता था। मौर्यों के पश्चात् शुंगों की राजधानी भी पाटलिपुत्र में रही। इस समय तक यूनानी मेनेंडर ने साकेत और पाटलिपुत्र पहुँचकर देश को आक्रांत कर डाला, किंतु शीघ्र ही पुष्यमित्र ने उसे परास्त करके इन दोनों नगरों में अपना शासन स्थापित किया।

गुप्तकाल के प्रथम चरण में भी गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में ही स्थित थी। कई अभिलेखों से यह भी जान पड़ता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने, जो भागवत धर्म का महान् पोषक था, अपने साम्राज्य की राजधानी अयोध्या में बनाई थी।

चीनी यात्री फाहियान जब भारत आया था, तो उसने पाटलिपुत्र की

भव्यता तथा इसकी विशालता का जो वर्णन किया है, वह आज भी दिल को छूने वाला है। इस नगर के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि यहाँ के भवन और राजप्रासाद इतने भव्य और विशाल थे कि शिल्प की दृष्टि से उन्हें अतिमानवीय हाथों का बनाया हुआ समझा जाता था। इस भाँति गुप्तकालीन संस्कृत कवि वररुचि ने पाटलिपुत्र की शोभा का वर्णन करते हुए लिखा है कि इसकी अट्टालिकाएँ स्वर्ग के महलों से तुलनीय हैं।

गुप्तकाल की अवनति के साथ-साथ पाटलिपुत्र का महत्त्व भी कम होने लगा। तत्कालीन मुद्राओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुप्त साम्राज्य के ताम्र-सिक्कों की टकसाल समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त द्वितीय के समय ही अयोध्या में स्थापित हो गई थी। छठी सदी में हूणों के आक्रमण के कारण पाटलिपुत्र की समृद्धि को बहुत धक्का पहुँचा और उसका रहा-सहा गौरव भी जाता रहा।

सन् ६३० से ६४४ के दौरान भारत की यात्रा करनेवाले चीनी यात्री युवानचुयांग ने ६३८ ईसवी में पाटलिपुत्र में सैकड़ों खंडहर देखे थे। गंगा के पास दीवार से घिरे हुए इस नगर में उसने केवल एक सहस्र मनुष्यों की आबादी ही पाई। युवानचुयांग ने लिखा है कि पुरानी बस्ती को छोड़कर एक बस्ती बसाई गई थी।

महाराज हर्ष ने पाटलिपुत्र में अपनी राजधानी न बनाकर कन्नौज को यह गौरव प्रदान किया। ८वीं ईसवी के लगभग बंगाल के पाल-नरेश धर्मपाल द्वितीय ने कुछ समय के लिए पाटलिपुत्र में अपनी राजधानी बनाई। इसके बाद सैकड़ों वर्षों तक यह प्राचीन नगर विस्मृति के गर्त में पड़ा रहा। १५४१ में शेरशाह ने पाटलिपुत्र को एक बार पुनः बसाया। वह बिहारवासी होने के कारण इस नगर के महत्त्व को जानता था। उसके बाद से ही यह पटना कहा जाने लगा। शेरशाह के पहले बिहार प्रांत की राजधानी बिहार नामक स्थान में थी, जो पाल-नरेशों के समय उदंडपुर नाम से प्रसिद्ध था। शेरशाह के पश्चात् मुगलकाल में पटना में ही बिहार प्रांत की राजधानी स्थायी रूप से रही, जब इसे कुछ काल के लिए अजीमाबाद नाम भी दिया गया; लेकिन वह चला नहीं। ब्रिटिश काल में १८९२ में पटना को बिहार-उड़ीसा के संयुक्त सूबे की राजधानी बनाया गया।

उपर्युक्त सूचना श्री विजयेंद्र कुमार माथुर की पुस्तक 'ऐतिहासिक स्थानावली' से ली गई है, जो पाटलिपुत्र के इतिहास, भूगोल और राजनीति पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।

ठीक ही कहा गया है कि इतिहास अपने आपको दुहराता है। ईसा के चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई पाटलिपुत्र की यात्रा बीच-बीच में पुष्पपुर, कुसुमपुर, पालीबौथ, अजीमाबाद के पड़ावों पर रुकती हुई, पटना में आकर ठहर गई और अब पुनः इतिहास ने करवट ली है। पटना का नामकरण पाटलिपुत्र किया जाए, इस पर विचार चल रहा है। संभव है कि इस नाम-परिवर्तन से यहाँ की संस्कृति, इतिहास, शिक्षा, सौंदर्य, मनस्विता सबका उचित विकास हो जाए। एक बार पुनः पाटलिपुत्र का गौरवबोध यहाँ के नागरिकों के माथे पर विजय-तिलक बनकर चमचमाए।

भगवान् रामचंद्र और लक्ष्मण को लेकर ऋषि विश्वामित्र इसी स्थल पर गंगा पार कर जनकपुर गए थे। भगवान् तथागत ने अंतिम बार नालंदा से वैशाली जाते समय यहीं गंगाजी को पार किया था।

महाराज अशोक का जन्म इसी पाटलिपुत्र की धरा पर हुआ था। भगवान् बुद्ध की स्मृति में उन्होंने आठ हजार चार सौ स्तूप बनवाए थे, उनमें सबसे पहला और सबसे बड़ा स्तूप यहीं बना था। चंद्रगुप्त, अजातशत्रु और समुद्रगुप्त जैसे प्रतापी राजाओं का निवास भी यहीं रहा। कात्यायन और कौटिल्य, दोनों ने इसी धरा पर रहकर विश्व के सर्वश्रेष्ठ महामंत्रियों का गौरव प्राप्त किया।

खगोलशास्त्र के सुप्रसिद्ध ज्ञाता आर्यभट्ट की जन्मभूमि भी यही धरती है। सिक्खों के अंतिम गुरु श्री गोविंदसिंहजी का जन्म भी यहीं हुआ, जहाँ हर मंदिर है और वह स्थल आज 'पटना साहिब' के नाम से गैरवान्वित है। आधुनिक काल में राजा राममोहन राय ने तीन साल पटना रहकर अरबी और फारसी का अध्ययन किया था।

मलबों के नीचे जो इतिहास पड़ा होता है, वह कम मनोरंजक नहीं होता। १९९२ में कुंभरार के उत्खनन के समय चंद्रगुप्त मौर्य के राजप्रासाद का जो भाग निकला, उसने पहली बार प्रत्यक्षतः पाटलिपुत्र की उस भव्यता का बखान किया, जिसके संबंध में फाहियान, मेगस्थनीज तथा ह्वेनसांग जैसे यात्रियों ने लिखा था। इस उत्खनन से यह भी पता चलता है कि पाटलिपुत्र दो बार नष्ट हुआ था। मौर्यकाल में अग्नि से तथा उसके बाद पुनः एक बार

और। कैसे? यह कहना कठिन है, लेकिन ग्रंथों में यह उल्लेख मिलता है कि भगवान् बुद्ध ने इस नगर की प्रशंसा करते हुए यह भी कहा था कि इसे अग्नि, जल तथा आपसी कलह का खतरा बराबर बना रहेगा और इसी से यह नष्ट होगा।

वैसे पाटलिपुत्र के प्रसंग में 'आरोग्य विहार' के क्रम में धन्वंतरि की चर्चा 'कमलदह' में तथा मैथिल कोकिल विद्यापति की चर्चा भी जनश्रुतियों में आई है।

शेरशाह के काल में निर्मित अनेक भवनों, मसजिदों तथा अन्य यादगारों के अवशेष भी पटना में पर्याप्त रूप से मिलते हैं। जैसे शहरपनाह, चौक थाना के पास मदरसा मसजिद, चहल सतून जिसमें चालीस स्तंभ थे। इसी में फर्रुखसियर और शाहआलम को अस्त होते हुए मुगल सम्राट् की गद्दी पर बैठाया गया था। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के वालिद हयातजंग की समाधि भी यहीं है। पटना सिटी चौक के कुछ ही दूरी पर महाराजगंज मुहल्ले में बड़ी पाटनदेवी का मंदिर है। लोगों का यह भी मानना है कि पार्वती के पट गिरने से वहाँ पाटनदेवी हुई और इसी से इस शहर का नाम पटना पड़ा।

अंग्रेजों के जमाने का बना गोलघर, राष्ट्रीय आंदोलन की देन सदाकत आश्रम, भारत में मौर्य और गुप्तकाल की अनमोल धरोहरों से युक्त पटना संग्रहालय, उसमें मुसकराती दीदारगंज की यक्षिणी, सचिवालय के सामने १९४२ की क्रांति के वीर सपूतों की प्रतिमाएँ 'शहीद-स्मृति', सेवानिवृत्त होने के बाद देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद का आवास, कुंभरार के अवशेष, खुदा बख्श लाइब्रेरी, गंगा का विशाल तट, गांधी-सेतु, पत्थर की मसजिद, हनुमान मंदिर, पटना सिटी किला हाउस, गांधी मैदान—मिल-जुलकर आपकी क्षुधा तृप्ति कर देंगे। इसके साथ ही देश का सबसे बड़ा तारामंडल भी आपको अब यहीं देखने को मिलेगा।

पटना, जो कभी पाटलिपुत्र था, अपने दामन में बुद्ध की करुणा, महावीर की अहिंसा, अशोक की विशालता, चंद्रगुप्त मौर्य की वीरता, चाणक्य की कूटनीति, पुष्यमित्र की धीरता, चित्रलेखा का सौंदर्य, आर्यभट्ट का मौसम-विज्ञान, शेरशाह सूरी का न्याय, गुरु गोविंदसिंहजी की असि की धार तथा वीर कुँवरसिंह का पौरुष छिपाए हुए है। यही उसका गौरव है। □

यात्रा : परिवेश : आत्मिक सुख

'राजेश नहीं आया?' मैं पूछता हूँ।

'इनका यही हाल है। कभी-कभी तो सवेरे निकलते हैं तो रात में ही आते है।' जुगनू कहती है।

छः से अधिक हो रहा है। राजेश सवेरे आठ बजे नाश्ता करके गया है। दिन-भर काम...काम...आने का, खाने का, फोन से बात करने का कुछ भी मौका नहीं। दूर से लगता है, कितना मोहक है आई. ए. एस. और यहाँ उत्तरदायित्व-बोध ऐसा कि खाने-पीने का भी ठिकाना नहीं।

रह-रहकर रामसेवक की पत्नी कल्पना की बात याद आती है, जो उसने मेरी पत्नी से कभी कही थी, 'दीदी, मैं तो हर लड़की को यही सलाह दूँगी कि वह किसी आई. ए. एस. से शादी न करे। भला बताइए, ये कभी-कभी तीन-तीन, चार-चार दिन तक बाहर रह जाते हैं। बिना नहाए-खाए। इस बार तो बाढ़ में सात दिन और सात रात लगातार बाहर रह गए।'

लेकिन आई. ए. एस. का क्रेज ऐसा है कि हर पिता अपनी लड़की का हाथ किसी आई. ए. एस. के हाथ में देना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि मानता है। शासन, सत्ता, अधिकार, पद, गरिमा—इन अक्षरों का योग आई. ए. एस. में सन्निहित है। राजेश बेलोनिया में एस. डी. ओ. है, तो पूरे सब-डिवीजन का भार इसके ऊपर है, साथ ही अधिकार भी है। कर्तव्य और अधिकार साथ-साथ चलते हैं। मानिए तो सब कुछ, न मानिए तो कुछ भी नहीं।

जीवन में पहली बार हम ऐसी जगह आए हैं जहाँ हमारी कोई अपनी पहचान नहीं है। एक भी व्यक्ति हमारा परिचित नहीं; यहाँ मैं मात्र अपने बेटे यानी एस. डी. ओ. साहब का पिता हूँ। यह किसी पिता के लिए कितने गौरव की बात है कि उसकी अपनी पहचान बेटे की पहचान में खो जाए। पहले हम घबरा रहे थे—'राजेश त्रिपुरा कैडर में चला गया। कितनी दूर।' बाद में जब बेलोनिया में पोस्टिंग का सुना तो और घबराहट हुई—पता नहीं कैसी जगह